International Journal of Humanities, Social Sciences and Literary Research
Website: www.ijhslr.org/
E-mail: editorinchief@ijhslr.org

मृत्युबोध और हिन्दी कविता

रवीन्द्र सिंह यादव

हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बदायूँ, उत्तरप्रदेश

**Corresponding author email: drravindrayadavhindi@gmail.com*

Received:09 July 2025, Revised: 19 September 2025, Accepted: 02 December 2025, Available Online: 19 December, 2025

न केवल मनुष्य बल्कि प्राणी मात्र के भय का सबसे बड़ा कारण मृत्यु है। मृत्यु से हर प्राणी भयभीत रहता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है और मानव जीवन के अस्तित्व से संबंधित इस मूलभूत प्रश्न पर उसने गंभीरता से चिंतन-मनन किया है। प्राचीन काल से ही दुनिया के विभिन्न भागों में विभिन्न मनीषियों ने मृत्यु के संबंध में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये, जिन्होंने मानव की विचारधारा और संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। भारतीय ज्ञान परंपरा की नास्तिक धाराएं जहाँ जीवन को मृत्यु के साथ समाप्त मानती हैं, वहीं आस्तिक धाराएं इसे एक 'रूपांतरण' के रूप में देखती हैं, जिसमें पुनर्जन्म, स्वर्ग, ईश्वर सान्निध्य और मोक्ष की अवधारणाएं समाहित हैं।

साहित्य समाज का दर्पण होता है और समाज के गहनतम मानवीय अनुभव साहित्य में ही अपनी अभिव्यक्ति पाते हैं। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक मृत्युबोध का स्वरूप निरंतर विकसित हुआ है। जहाँ कबीर के यहाँ मृत्यु एक 'बारात' (दूल्हा बनकर राम का आना) है, वहीं छायावाद में यह 'चिर निद्रा' या एक 'विश्राम' के रूप में अंकित हुई है।

मृत्युबोध का दार्शनिक एवं साहित्यिक आधार

जीवन की क्षणभंगुरता एक सार्वकालिक और सर्वस्वीकृत तथ्य है। मनुष्य अपने साथ घटित होने से पूर्व मृत्यु को कई बार निकट से देखता-सुनता है और बार-बार इस जीवन को पानी के बुलबुले की भांति किसी भी क्षण नश्वर होने वाला मानने के लिए विवश होता है। किंतु साहित्यकार सामान्य अनुभव से आगे जाकर मृत्यु को जीवन की 'पूर्णता' या 'सार्थकता' की कसौटी के रूप में देखता है। मृत्यु का भय जब बोध में बदलता है, तभी जीवन की वास्तविक मूल्यवत्ता समझ में आती है।

हिन्दी कविता ने मृत्युबोध को केवल शोक के रूप में नहीं, बल्कि एक अनिवार्य सत्य और सृजन की प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया है। समकालीन कविता तक आते-आते यह बोध अस्तित्ववादी संकटों से लेकर व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष तक फैल गया है। हिन्दी के विभिन्न साहित्यकारों ने मृत्युबोध के संबंध में बहुत सुंदर और यथार्थ रीति से समाज को दृष्टि प्रदान की है, जिनके उदाहरण इस वैचारिक यात्रा को स्पष्ट करते हैं:

- भक्तिकालीन संदर्भ: संतों ने "माटी कहे कुम्हार से" जैसे प्रतीकों के माध्यम से देह की नश्वरता को रेखांकित कर मनुष्य को अहंकार मुक्त होने का संदेश दिया
- छायावादी दृष्टि: निराला की 'सरोज स्मृति' में मृत्युबोध एक व्यक्तिगत विलाप से ऊपर उठकर करुणा का महाकाव्य बन जाता है, वहीं महादेवी वर्मा के यहाँ मृत्यु 'अनंत पथ' का पाथेय है।
- प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी दृष्टिकोण: यहाँ मृत्यु अलौकिक नहीं, बल्कि इसी मिट्टी की एक सच्चाई है। अज्ञेय और मुक्तिबोध जैसे कवियों ने मृत्यु के साक्षात्कार को 'आत्म-साक्षात्कार' के समतुल्य माना है।

अतः मृत्युबोध हिंदी कविता में केवल अंत का सूचक नहीं है, बल्कि यह जीवन को समग्रता में समझने की एक अनिवार्य खिड़की है। इसी संदर्भ में प्रमुख कवियों और उनकी काव्य-दृष्टि का विवेचन निम्नलिखित है–जिनमें से कुछ उदाहरण क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत है -

हिंदी के सर्वप्रसिद्ध कवियों में एक संत कबीरदास का दोहा है -

जो ऊग्या सो अंतवै, फूल्या सो कुमिलाहि ।
जो चिनिया सो ढहि परै, जो आया सो जाहि ।।[1]

संत कबीर के अनुसार इस संसार में जो उदित हुआ है उसका अस्त होना निश्चित है जो पुष्पित हुआ है उसका मुरझाना निश्चित है, जो निर्मित हुआ है उसका ढह जाना निश्चित है और जो आया है उसका जाना निश्चित है । इसलिए मनुष्य को मृत्यु से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है । मृत्यु तो उसी दिन तय हो जाती है जिस दिन किसी वस्तु या प्राणी का जन्म होता है । यह सृष्टि का अनिवार्य क्रम है । कबीरदास जी ने मृत्यु को किसी अनहोनी घटना के रूप में नहीं, बल्कि प्रकृति के एक चक्रीय और अनिवार्य नियम के रूप में देखा है। उनके लिए मृत्यु का भय अज्ञानता की उपज है। उपर्युक्त साखी इसी सत्य की उद्घोषणा करती है:

- **अद्वैतपरक दृष्टिकोण:** कबीर के यहाँ मृत्यु शरीर का अंत तो है, पर चेतना का नहीं। वे मृत्यु को 'पीहर' से 'ससुराल' जाने की प्रक्रिया मानते हैं। उनके लिए मृत्यु उस

परमात्मा से मिलने का उत्सव है जिससे जीवात्मा बिछड़ गई थी। इसीलिए वे कहते हैं– *"जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनंद।"*

- **अहंकार का विसर्जन:** कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि मृत्यु का बोध मनुष्य को विनम्र बनाता है। जब यह निश्चित है कि "जो चिनिया सो ढहि परै" (जो बनाया है वह ढह जाएगा), तो फिर संचय और अहंकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
- **समय की अनिवार्यता:** 'काल' कबीर के काव्य में एक शिकारी की तरह उपस्थित है, जिससे कोई बच नहीं सकता। कबीर का मृत्युबोध व्यक्ति को वर्तमान में जीने और 'सतकर्म' करने की प्रेरणा देता है, क्योंकि समय का चक्र निरंतर चल रहा है।

निष्कर्षतः, कबीर के अनुसार मृत्यु से भयभीत होना व्यर्थ है क्योंकि यह जीवन की पराजय नहीं, बल्कि एक अनिवार्य विश्राम और रूपांतरण है। जहाँ संसार मृत्यु को 'अंत' समझकर रोता है, कबीर उसे 'पूर्णता' मानकर सहज भाव से स्वीकार करने का संदेश देते हैं।

आधुनिक कवि सुमित्रानंदन पंत अपनी कविता “नौका विहार” में लिखते हैं-

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उदगम ।
शाश्वत गति, शाश्वत संगम ।[2]

नदी की धारा को रूपक बनाकर प्रस्तुत करते हुए पंत जी लिखते हैं, जिस प्रकार नदी में पुराना पानी बह जाता है नया पानी उसका स्थान ले लेता है और नदी निरंतर बहती रहती है, निरंतर नयी होती रहती है, उसी प्रकार यह संसार नित्य नवीन होता रहता है। यह सृष्टि इसीलिए जीवंत है, इसलिए शाश्वत है क्योंकि यह पुराने पत्तों को झाड़ देती है और नयी कोंपलें और नए पत्ते निरंतर विकसित होते रहते हैं । इसी प्रकार मानव जगत में पुराने लोग जाते रहते हैं नए लोग आते रहते हैं और सृष्टि नृत्य नवीन बनी रहती है । सुमित्रानंदन पंत 'प्रकृति के सुकुमार कवि' हैं, इसलिए उनका मृत्युबोध भी प्रकृति के सहज परिवर्तनों से ही अनुप्राणित है। "नौका विहार" की ये पंक्तियाँ जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म के त्रिकोण को एक दार्शनिक प्रवाह प्रदान करती हैं:

"शाश्वत नीलाभ का विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास, शाश्वत लघु लहरों का विलास! हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार, शाश्वत जीवन-नौका विहार!"

विवेचन:

- **मृत्यु: एक विराम, अंत नहीं:** पंत जी के लिए मृत्यु जीवन का अंत नहीं, बल्कि एक 'विश्राम' है। जैसे नदी का जल कभी समाप्त नहीं होता, केवल उसकी लहरें बदलती रहती हैं, वैसे ही आत्मा की यात्रा शाश्वत है।
- **परिवर्तन ही जीवन का आधार है:** आपने सही उल्लेख किया है कि पुराने पत्तों का झड़ना और नई कोंपलों का आना ही सृष्टि की जीवंतता है। यदि मृत्यु न हो, तो जीवन जड़ हो जाएगा। मृत्यु ही वह तत्व है जो जीवन को 'नूतनता' और 'गति' प्रदान करता है।
- **दार्शनिक समन्वय:** यहाँ पंत जी उपनिषदों के उस सत्य के करीब पहुँचते हैं जहाँ आत्मा को अजर-अमर माना गया है। वे मृत्यु के भय को 'शाश्वत सत्य' के बोध से मिटा देते हैं। उनके अनुसार, मृत्यु केवल एक 'छाया' है जो जीवन रूपी प्रकाश को और अधिक स्पष्ट करती है।

पंत का मृत्युबोध विषादपूर्ण नहीं बल्कि उल्लासमय है। वे मृत्यु को 'जग-जीवन के कर्णधार' (ईश्वर/प्रकृति) की एक ऐसी व्यवस्था मानते हैं, जो संसार रूपी नौका को निरंतर गतिशील रखती है। उनके काव्य में मृत्यु, जीवन के महासंगीत का एक मधुर स्वर है।

इस संबंध में ख्यातिनाम कवि मुक्तिबोध लिखते हैं -

यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव जीवन है क्षणभंगुर,
ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदन से हो आतुर ।।
क्षणभंगुरता के इस क्षण में, जीवन की गति, जीवन का स्वर,
दो सौ वर्ष आयु यदि होती तो क्या अधिक सुखी होता नर ?
इसी अमर गाथा के आगे बहाने के हित यह सब नश्वर
सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरणगीत तुम सुंदर ।।[3]

अर्थात तात्कालिक शोक से विचलित होकर हे मनुष्य तू इस जीवन को निरर्थक मत समझ । यह सृष्टि नदी की भांति निरंतर प्रवहमान रहती है । इसे जीवन की गति जीवन का स्वर समझ । यदि मनुष्य का जीवन लंबा होता तो क्या वह अधिक सुखी होता । इस सृष्टि को आगे बढ़ाने के लिए ही यह सारा जग नश्वर है । इस बात को हमें समझना चाहिए ।

गजानन माधव मुक्तिबोध 'अंधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' जैसे काव्यों के रचयिता हैं, जो जीवन की जटिलताओं को गहराई से पकड़ते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में वे मृत्यु को केवल एक भौतिक अंत के रूप में स्वीकार करने के बजाय उसे **जीवन की सार्थकता** की कसौटी मानते हैं।

विवेचन के कुछ मुख्य बिंदु:

- **दीर्घायु बनाम सार्थक आयु:** मुक्तिबोध का प्रश्न– *"दो सौ वर्ष आयु यदि होती तो क्या अधिक सुखी होता नर?"* –सीधे मनुष्य की जिजीविषा और उसकी उपलब्धि पर प्रहार

करता है। उनके अनुसार, जीवन की महत्ता वर्षों की संख्या में नहीं, बल्कि उन क्षणों के 'सृजन' में है जो मनुष्य ने जिए हैं।

- **नश्वरता का सकारात्मक पक्ष:** मुक्तिबोध यह तर्क देते हैं कि यदि सब कुछ अमर होता, तो नवीनता का मूल्य समाप्त हो जाता। 'अमर गाथा' को आगे बढ़ाने के लिए 'नश्वरता' अनिवार्य है। मृत्यु ही वह तत्व है जो मनुष्य को सीमित समय में कुछ श्रेष्ठ और महान कर गुजरने के लिए प्रेरित करती है।
- **मरणगीत का सौंदर्य:** कवि का "मरणगीत तुम सुंदर" गाना विरोधाभासी लग सकता है, किंतु यह वास्तव में मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का गान है। यह उस 'सृजनशील जीवन' का आह्वान है जो मृत्यु को जानते हुए भी कर्मठ बना रहता है। यह मृत्युबोध मनुष्य को कुंठा (Depression) की ओर नहीं, बल्कि 'लोक-हित' और 'सृजन' की ओर ले जाता है।

मुक्तिबोध की दृष्टि में मृत्युबोध एक **क्रांतिकारी चेतना** है। वे मृत्यु के भय को जीवन की गति और स्वर में विलीन कर देना चाहते हैं। उनके लिए मृत्युबोध का अर्थ है–इस नश्वर संसार में रहते हुए भी कुछ ऐसा सृजन करना जो कालजयी हो।

मृत्यु के प्रति इस प्रेरक भाव को और आगे बढ़ते हुए कवि अज्ञेय लिखते हैं-

मैंने देखा
एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंग गई क्षण भर
ढलते सूरज की आग से
xxx
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से ।[4]

अर्थात जीवन की सार्थकता अधिक समय तक जीने में नहीं है बल्कि सार्थक जीने में है वे सागर की सतह पर लहरों से उछली एक बूंद का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि उस बूंद पर सूर्य की लालिमा पड़ी, बूंद मोती की तरह चमकी, उसने अपने होने को सिद्ध किया और पुनः सागर में विलीन हो गई, बूंद का होना सार्थक हो गया । इसी प्रकार प्रकृति ने मानव को जो जीवन प्रदान किया उसमें सार्थकता ही जीवन को सफल और असफल बनती है । मनुष्य को मृत्यु से न डर कर, इस जीवन के पीछे सृष्टि की प्रेरणा को समझते हुए सृष्टि के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए अपने जीवन को सार्थक बनाने की कोशिश करनी चाहिए । सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने 'एक बूंद सहसा उछली' कविता के माध्यम

से मृत्यु और नश्वरता को एक नया अर्थ दिया है। जहाँ पुराने कवियों के लिए बूंद का सागर में मिलना 'विनाश' का प्रतीक था, अज्ञेय के लिए वह 'विराट के साक्षात्कार' का क्षण है।

विवेचन के मुख्य आयाम:

- **क्षण की महत्ता (Importance of the Moment):** अज्ञेय के अनुसार, जीवन का मूल्य उसकी अवधि (Quantity) में नहीं, बल्कि उसकी सघनता (Intensity) में है। वह 'क्षण भर' जब बूंद सूरज की आग से रँग जाती है, उस बूंद के पूरे अस्तित्व की सार्थकता है। मृत्यु उस बूंद को मिटाती नहीं है, बल्कि उसे 'नश्वरता के दाग' से मुक्त कर देती है।
- **नश्वरता से मुक्ति (उन्मोचन):** आपने बहुत सटीक लिखा है कि वह चमकना ही 'होने को सिद्ध करना' है। अज्ञेय का मानना है कि यदि हम उस एक क्षण को भी पूरी तन्मयता और प्रकाश के साथ जी लेते हैं, तो मृत्यु हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। वह क्षण 'कालातीत' (Timeless) हो जाता है।
- **मृत्युबोध का रूपांतरण:** यहाँ मृत्युबोध 'डर' से बदलकर 'आत्म-चेतना' बन जाता है। यह बोध मनुष्य को सिखाता है कि विराट (सागर) में विलीन होने से पहले अपनी वैयक्तिकता (Individual Identity) को सार्थक करना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है।

इस प्रकार हिंदी साहित्य मनुष्य को व्यावहारिक रूप से मृत्यु के भय से मुक्त होने तथा जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा और साहस प्रदान करता है । उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य में 'मृत्युबोध' केवल एक दार्शनिक गुत्थी या शोक का विषय नहीं रहा है, बल्कि यह जीवन को समग्रता में समझने की एक अनिवार्य दृष्टि है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों ने अपनी लेखनी के माध्यम से मृत्यु के भयावह चेहरे को 'सत्य', 'सौंदर्य' और 'सृजन' के आवरण से अलंकृत किया है। जहाँ **कबीर** जैसे संतों ने मृत्यु को परमात्मा से मिलन का उत्सव मानकर उसके प्रति व्याप्त अज्ञानता के भय को दूर किया, वहीं **पंत** ने इसे प्रकृति के शाश्वत क्रम के रूप में स्वीकार कर जीवन की निरंतरता को रेखांकित किया। **मुक्तिबोध** और **अज्ञेय** जैसे आधुनिक रचनाकारों ने इसे और अधिक यथार्थवादी धरातल पर रखते हुए यह सिद्ध किया कि जीवन की सार्थकता उसकी 'दीर्घता' में नहीं, बल्कि 'सघनता' और 'सृजनशीलता' में निहित है। **सारांशतः**, हिन्दी कविता मनुष्य को यह बोध कराती है कि मृत्यु जीवन का अंत नहीं, बल्कि उसकी सार्थकता की कसौटी है। यह बोध मनुष्य को पलायनवाद की ओर नहीं ले जाता, बल्कि उसे अपने वर्तमान क्षणों को मूल्यवान बनाने, अहंकार का त्याग करने और लोक-मंगल हेतु सृजन करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य मनुष्य को व्यावहारिक रूप से मृत्यु के भय से मुक्त होने तथा जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा और साहस प्रदान करता है। यही वह 'अमृतत्व' है जिसे प्राप्त कर मनुष्य नश्वर होकर भी अपने कर्मों के माध्यम से सदैव जीवित रहता है।

संदर्भ सूची

1. कबीरदास, कबीर ग्रंथावली, संपादक डॉ श्यामसुंदरदास, पृष्ठ संख्या 76, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण बीसवाँ, सं 2055
2. सुमित्रानंदन पंत, नौका विहार, कविता, पृष्ठ संख्या 65, रश्मिबंध, अट्ठाईसवां संस्करण 2015, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-02, प्रथम प्रकाशन - गुंजन 1932
3. गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता मृत्यु और कवि, तारसप्तक, संपादक अज्ञेय, पृष्ठ संख्या 32, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली -03, नौवां संस्करण, 2009
4. अज्ञेय, एक बूंद, कविता, अंतरा (भाग-2), एन सी ई आर टी, संस्करण 2012